राष्ट्र का स्वरूप (निबन्ध)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न 1. सच्चे अर्थों में सम्पूर्ण राष्ट्रीय विचारधाराओं की जननी कौन है?

(अ) पृथ्वी
(ब) संस्कृति
(स) जैन
(द) राष्ट्र

उत्तर: (अ) पृथ्वी

प्रश्न 2. जन का मस्तिष्क है?

(अ) नदी
(ब) पर्वत
(स) राष्ट्र
(द) संस्कृति

उत्तर: (द) संस्कृति।

प्रश्न 3. संस्कृति का अमित भण्डार भरा हुआ है –

(अ) लोकगीतों व लोककथाओं में
(ब) प्राकृतिक सौन्दर्य में
(स) जन-मानस में
(द) धर्म व विज्ञान में।

उत्तर: (अ) लोकगीतों व लोककथाओं में

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. पृथ्वी वसुन्धरा क्यों कहलाती है?

उत्तर: पृथ्वी के गर्भ में बहुमूल्य कोष (रत्न, खनिज आदि के भण्डार) भरे हुए हैं, इसलिए पृथ्वी वसुन्धरा कहलाती है।

प्रश्न 2. जागरणशील राष्ट्र के लिए आनन्दप्रद कर्त्तव्य किसे माना है?

उत्तर: पृथ्वी के साँगोपांग अध्ययन को जागरणशील राष्ट्र के लिए बहुत ही आनन्दप्रद कर्त्तव्य माना गया है।

प्रश्न 3. सैकड़ों वर्षों से शून्य और अन्धकार भरे जीवन के क्षेत्रों में उजाला कब दिखाई देगा?

उत्तर: जब हम पृथ्वी के प्रत्येक भाग का ज्ञान प्राप्त करेंगे, तब सैकड़ों वर्षों से शून्य और अंधकार से भरे जीवन के क्षेत्रों में उजाला दिखाई देगा।

प्रश्न 4. राष्ट्र की वृद्धि कैसे संभव है?

उत्तर: संस्कृति के विकास और उन्नति के द्वारा ही राष्ट्र की वृद्धि संभव है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. मेघ हमारे अध्ययन की परिधि में क्यों आने चाहिए?

उत्तर: मेघ अर्थात् बादल, बादलों के बरसने से ही पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। प्रकृति अपने सौन्दर्य को प्राप्त करती है। पेड़-पौधे और विभिन्न प्रकार की वनस्पति विकसित होती है। वर्षा का यह जल विभिन्न रूप से सहायक सिद्ध होता है।

अतः निर्माण और विकास की प्रक्रिया को जानना हमारे लिए आवश्यक है। जब हम मेघों का अध्ययन करेंगे, तब ही हमें उनकी निर्माण प्रक्रिया और पृथ्वी के लिए उनकी उपयोगिता का ज्ञान होगा।

प्रश्न 2. हमारी राष्ट्रीयता कैसे बलवती हो सकती है?

उत्तर: मनुष्य का कर्तव्य है कि वह भूमि को विभिन्न प्रकार से समृद्ध बनाने की दिशा में प्रयास करे, क्योंकि पृथ्वी ही समस्त राष्ट्रीय विचारधाराओं की जननी है। जो राष्ट्रीय विचारधारा पृथ्वी से सम्बद्ध नहीं होती, वह आधारविहीन होती है और उसका अस्तित्व कुछ ही समय में समाप्त हो जाता है। इसलिए पृथ्वी के गौरवपूर्ण अस्तित्व के विषय में हम जितने अधिक सचेत रहेंगे, हमारी राष्ट्रीयता उतनी ही बलवती हो सकती है।

प्रश्न 3. पृथ्वी के वरदानों में भाग पाने का अधिकार किसे व क्यों है?

उत्तर: जो मनुष्य (जन) पृथ्वी को अपनी माता मानकर उसका सत्कार करते हैं, उन्हें ही उसकी सम्पत्ति अर्थात् पृथ्वी के गर्भ में संचित कोष को पाने का अधिकार होता है। वही जन पृथ्वी के वरदानों में भाग पाने का अधिकारी है।"पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका आज्ञाकारी पुत्र हूँ।

" इस भावना के साथ तथा माता और पुत्र के सम्बन्धं की मर्यादा को स्वीकार करके व्यक्ति अपने राष्ट्र एवं देश के प्रति अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति सजग हो सकता है।

प्रश्न 4. 'जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है' से क्या अभिप्राय है?

उत्तर: कोई वृक्ष कितना ही सुन्दर क्यों न हो, यदि उस पर फूल नहीं आते तो वह आदर और सम्मान का उतना अधिकारी नहीं होता है, जितना फूलों वाला वृक्ष। जिस प्रकार किसी वृक्ष का सौन्दर्य उसके फूलों पर निर्भर करता है, उसी प्रकार राष्ट्र के जीवन का चिन्तन-मनन एवं सौन्दर्य-बोध उसकी संस्कृति में ही निवास करता है। इसीलिए यह कहा जाता है कि जीवन के विटप अथवा राष्ट्ररूपी वृक्ष का पुष्प उसकी संस्कृति ही है।

निबंधात्मक प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. "राष्ट्रीयता की जड़ें पृथ्वी में जितनी गहरी होंगी, उतना ही राष्ट्रीय भावों का अंकुर पल्लवित होगा', के आधार पर राष्ट्रीयता के विकास में जन के भूमि के प्रति क्या कर्तव्य हैं?

उत्तर: मानवजाति का यह कर्त्तव्य है कि वह इस भूमि के सौन्दर्य के प्रति सजग रहे और इसके रूप को विकृत न होने दे। साथ ही प्रत्येक मनुष्य का यह भी कर्तव्य है कि वह भूमि को प्रत्येक प्रकार से समृद्धशाली बनाने का प्रयास करे।

पृथ्वी ही समस्त राष्ट्रीय विचारधाराओं की जननी है और जो विचारधारा पृथ्वी से सम्बद्ध नहीं होती, वह थोड़े समय में ही अपना अस्तित्व खो देती है। अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि वह पृथ्वी के गौरवशाली अस्तित्व के प्रति सजग रहे। हम जितना सजग रहेंगे हमारी राष्ट्रीयता उतनी ही बलवती होगी।

राष्ट्रीयता का आधार जितना मजबूत होगा राष्ट्र के प्रति भावना भी उतनी अधिक विकसित होगी। अत: प्रारम्भ से अन्त तक पृथ्वी के भौतिक स्वरूप की जानकारी रखना तथा उसके रूप, सौन्दर्य, उपयोगिता एवं महिमा को पहचानना; प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है।

इन सबसे ऊपर प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह पृथ्वी के साथ माता-पुत्र का घनिष्ठ संबंध स्थापित करे। जब तक किसी भूभाग में निवास करने वाले मनुष्य वहाँ की भूमि को अपनी सच्ची माता और स्वयं को उस भूमि का पुत्र नहीं मानते, तब तक राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती।

जब हम अपने देश को अपनी माता के रूप में अनुभूत करने लगते हैं, तब हमारे मन में राष्ट्र के निर्माण की भावना उत्पन्न नहीं होती है।

'पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका आज्ञाकारी पुत्र हूँ।" इस भावना के साथ तथा माता और पुत्र के सम्बन्ध की मर्यादा स्वीकार करके प्रत्येक देशवासी अपने राष्ट्र एवं देश के लिए अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति सजग हो सकता है।

अत: प्रत्येक पुत्र का यह पावन कर्तव्य है कि वह अपनी पृथ्वी माता से स्नेह करे, नि:स्वार्थ भाव से उसकी सेवा करे और इस प्रकार उसको आशीर्वाद प्राप्त करे। माता के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नि:स्वार्थ धर्म है।

प्रश्न 2. 'पृथक-पृथक संस्कृतियाँ राष्ट्र में विकसित होती हैं, परन्तु उन सबका मूल आधार पारस्परिक सहिष्णुता और समन्वय पर निर्भर है" के आधार पर भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ बताइए?

उत्तर: प्रत्येक देश में पृथक – पृथक संस्कृतियाँ होती हैं, परन्तु उन समस्त संस्कृतियों का अस्तित्व पारस्परिक मेल-जोल एवं एकता की भावना पर निर्भर करता है। भारत एक ऐसा ही देश है, जिसमें प्राचीनकाल में ही पृथक-पृथक संस्कृतियाँ अस्तित्व में आईं।

पल्लवित और विकसित हुईं। भारत में समय-समय पर अनेक आक्रमण भी हुए हैं और उनी आक्रमणकारियों ने भारत पर न केवल राज्य किया अपितु उन्होंने भारत में अपनी संस्कृति का भी विस्तार किया। फिर चाहे वह मुगल, तुगलक या ब्रिटिश हों ।

सभी ने भारत में अपनी संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया। भारतीय संस्कृति ने उन सब को स्वयं में समाहित किया। बाह्य रूप से देखने पर भारत अनेक धर्म, जाति और संस्कृतियों में बँटा हुआ दिखाई देता है। यहाँ विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। विभिन्न प्रान्तों के लोग भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं, जिससे यह देश विभिन्न प्रकार से बँटा हुआ दिखाई देता है।

किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रत्येक भारतीय पारस्परिक सहिष्णुता और समन्वय की भावना से एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। जिस प्रकार जंगल में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ अदमित भाव से पल्लवित होती और फलती-फूलती हैं, उसी प्रकार ही भारत में भी विभिन्न संस्कृतियों के लोग सम्मिलित होकर प्रेम और सद्भाव से रहते हैं। वास्तव में इसकी विभिन्नताओं में एकता है।

बाह्य अन्तरों और विभिन्न संस्कृतियों के बावजूद उनके विशेष गुण पूर्णतया भारतीय हैं। उनकी समान राष्ट्रीय विरासत है तथा समान नैतिक तथा मानसिक गुण हैं। उनके जीने के तरीके भी समान हैं तथा जीवन एवं उनकी समस्याओं के प्रति समान दार्शनिक दृष्टिकोण है।

विभिन्नताओं के बावजूद भी सांस्कृतिक एकता है। ये विभिन्नताएँ नीचे रहकर गायब हो जाती हैं तथा एकता ही दिखाई देती है। पश्चिमी प्रभाव भी भारत की सांस्कृतिक एकता में आकर मिल गये। इस प्रकार भारत ने अपनी अन्य विभिन्नताओं के विपरीत सदैव एकता को अक्षुण्ण रखा है।

प्रश्न 3. राष्ट्र के स्वरूप की विवेचना कर उसके प्रमुख तत्वों को समझाइए?

उत्तर: कोई भी राष्ट्र अपनी भूमि, जन और संस्कृति से अपने स्वरूप को प्राप्त करता है। इनमें से किसी भी एक तत्व के अभाव में राष्ट्र अपूर्ण और अपंग हो जाता है या उसका कोई अस्तित्व ही नहीं रहता। इन्हीं तीनों के आधार पर राष्ट्ररूपी प्रासाद खड़ा होता है 'भूमि' राष्ट्र का प्रथम तत्व है।

भूमि का निर्माण देवों ने किया है। भूमि वास्तव में समस्त राष्ट्रीय धाराओं की जननी है। प्रत्येक राष्ट्रवासी का कर्तव्य है कि वह भूमि के महत्त्व को समझे। देश की भूमि की उपजाऊ शक्ति, जल बरसाने वाले मेघ, वनस्पति, पृथ्वी के गर्भ में छिपे बहुमूल्य पदार्थों आदि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे। देश के नवयुवकों में इन वस्तुओं के प्रति नवीन भाव जाग्रत करने चाहिए।

विज्ञान और श्रम दोनों को मिलाकर राष्ट्र के भौतिक स्वरूप अर्थात् भौतिक समृद्धि में वृद्धि करनी होगी तभी राष्ट्र नवीन रूप को प्राप्त कर सकेगा।

राष्ट्र का दूसरा तत्व'जन' है। पृथ्वी (भूमि) माता है तो उस भूमि पर रहने वाला निवासी (जन) उसके पुत्र हैं। माता-पुत्र का यह सम्बन्ध जड़ में चेतनता का विस्तार करता है। पृथ्वी को माता मानने की भावना राष्ट्रीयता को बढ़ाती है।

इसी भावना के कारण मनुष्य अपनी मातृभूमि के प्रति श्रद्धा एवं आनन्द के भाव से जुड़ा हुआ महसूस करता है। माता के प्रति सेवा-भावे और प्रेम पुत्र का कर्तव्य है। इस पृथ्वी पर बसने वाले सभी जन समान हैं। अनेक स्थानों पर रहते हुए तथा अनेक भाषा बोलते हुए भी पृथ्वी के जनों में मातृ-भाव है।

जन्मभूमि को जननी मानकर उसके प्रति उसी पूज्य भाव से जब वहाँ का जन अपने कर्तव्यपालन में जुटता है, तब वह राष्ट्र बहुमुखी प्रगति की ओर अग्रसर होने लगता है।

राष्ट्र का तीसरा तत्व संस्कृति' है। संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है। युगों-युगों से संचित सभ्यता का दूसरा नाम ही संस्कृति है। संस्कृति की उन्नति पर ही राष्ट्र की उन्नति निहित होती है। संस्कृति जन का मार्गदर्शन करती है। वास्तव में संस्कृति राष्ट्र के जीवन-विटप का पुष्प है। राष्ट्र के विभिन्न जनों की संस्कृति के समन्वय से ही राष्ट्रीय संस्कृति का स्वरूप विकसित होता है।

अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

लघूत्तरात्मक प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. भूमि के प्रति मनुष्य का क्या कर्तव्य है?

उत्तर: भूमि का निर्माण देवों के द्वारा किया गया है। इसको अस्तित्व अनंतकाल से है। मानव-जाति का यह कर्त्तव्य है कि वह इस भूमि के सौन्दर्य के प्रति सचेत रहे और इसके रूप को बिगड़ने न दे। प्रत्येक मनुष्य का यह भी कर्तव्य है कि वह भूमि को विभिन्न प्रकार से समृद्ध बनाने की दिशा में सचेत रहे।

प्रारम्भ से अन्त तक पृथ्वी के भौतिक स्वरूप की जानकारी रखना तथा उसके रूप-सौन्दर्य, उपयोगिता एवं महिमा को पहचानना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 2. हमारे देश के भावी आर्थिक विकास के लिए किन तथ्यों का परीक्षण बहुत आवश्यक है?

उत्तर: पृथ्वी के गर्भ में असीम मात्रा में मूल्यवान खजाना भरा हुआ है। हजारों-लाखों वर्षों से, जब से इस धरती का निर्माण हुआ, ।। इसके गर्भ में विभिन्न प्रकार के पदार्थ और धातुएँ पोषित होती रहीं। हमारे पहाड़ों से बड़ी-बड़ी नदियाँ दिन-रात बहते हुए पहाड़ों की उपजाऊ मिट्टी अपने साथ बहाकर लाती हैं।

जिससे इस धरती की मिट्टी ऊपजाऊ बनती है। जो हमारे देश को आर्थिक रूप से संपन्न बनाती है। इन सभी तथ्यों का परीक्षण हमारे देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है।

प्रश्न 3. राष्ट्रीय चेतना की जागृति में भौतिक ज्ञान-विज्ञान के महत्व को स्पष्ट करो?

उत्तर: राष्ट्रीयता की भावना केवल भावनात्मक स्तर पर ही नहीं होनी चाहिए; उससे भौतिक ज्ञान के प्रति चेतना जाग्रत हो ऐसा प्रयत्न भी होना चाहिए। पृथ्वी और आकाश के बीच स्थित-नक्षत्रों, गैसों एवं वस्तुओं का ज्ञान, समुद्र में स्थित जलचरों, खनिजों तथा रत्नों का ज्ञान एवं पृथ्वी के सीने में छुपी अपार सम्पदा की जानकारियों पर आधारित ज्ञान भी राष्ट्रीय चेतना को दृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है।

इसी के कारण नवयुवकों में राष्ट्रीय चेतना के प्रति जिज्ञासा विकसित होती है, जिससे राष्ट्र की वास्तविक उन्नति होती है।

प्रश्न 4. मातृभूमि की पूर्ण समृद्धि और ऐश्वर्य किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है?

उत्तर: विज्ञान और परिश्रम दोनों को मिलाकर राष्ट्र का भौतिक स्वरूप खड़ा करना होगा। इस भौतिक स्वरूप निर्माण का कार्य प्रसन्नता, उत्साह और बहुत अधिक परिश्रम के द्वारा प्रतिदिन आगे बढ़ाना होगा।

इसके लिए यह अति आवश्यक है कि राष्ट्र में जितने हाथ हों, सभी राष्ट्र के इस निर्माण-कार्य में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करें। कोई भी व्यक्ति इस कार्य में सहयोग करने से न चूके। तभी मातृभूमि की पूर्ण समृद्धि और ऐश्वर्य को प्राप्त किया जा सकता है।

प्रश्न 5. राष्ट्र का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व क्या है? भूमि के प्रति किस भाव के अभाव में राष्ट्र का निर्माण कर पाना असंभव है?

उत्तर: राष्ट्र का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व‘जन’ है। जब पृथ्वी पर ‘जन’ का निवास होता है, तभी पृथ्वी मातभूमि कहलाती है। जो भूमि जनविहीन हो, उसे राष्ट्र नहीं माना जा सकता। पृथ्वी और जन दोनों की उपस्थिति में ही राष्ट्र की कल्पना की जा सकती है।

इन सबसे ऊपर किसी भू-भाग में निवास करने वाले मनुष्य जब वहाँ की भूमि को अपनी माता और स्वयं को उसका पुत्र नहीं मानने लगते, तब तक राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती। इस प्रकार भूमि के प्रति माता-पुत्र के संबंध के भाव के अभाव में राष्ट्र का निर्माण कर पाना असंभव है।

प्रश्न 6. पृथ्वी के प्रति मनुष्य का क्या कर्तव्य है और क्यों?

उत्तर: जिस प्रकार माता हमें जन्म देती है, पालन-पोषण करती है। हम पर अपना स्नेह लुटाती है और हम अपनी माता के सम्मुख श्रद्धा से सिर झुकाते हैं; उसी प्रकार धरती हमें अन्न देती है, इसकी धूल में हम बड़े होते हैं, इसी की हवा में हम साँस लेते हैं।

इस प्रकार धरती भी माता के समान ही हमारा पालन-पोषण करती है। इसलिए प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह धरती को अपनी माता समझे और स्वयं को उसका पुत्र। उसकी रक्षा के लिए सर्वस्व अर्पित करने हेतु उसे सदैव तत्पर रहना चाहिए।

प्रश्न 7. 'भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ।' इस कथन की व्याख्या कीजिए?

उत्तर: जिस प्रकार माता हमें जन्म देती है, पालन-पोषण करती है, प्यार करती है, उसी प्रकार धरती हमें अन्न देती है, इसकी धूल में खेल-कूदकर हम बड़े होते हैं, इसकी ही निर्मल हवा में हम साँस लेते हैं। इस प्रकार यह धरती भी एक माता की तरह हमारा पालन-पोषण करती है, हमें स्नेह देती है।

अत: प्रत्येक जन को धरती को अपनी माता समझना चाहिए और स्वयं को उसका आज्ञाकारी पुत्र। माता-पुत्र का संबंध स्थापित करके उसे भूमि की रक्षा और उन्नति के लिए प्रयास करना चाहिए।

प्रश्न 8. "यह प्रणाम-भाव ही भूमि और जन की दृढ़ बन्धन है" आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर: आशय- (अपनी) धरती के प्रति आदर-भाव; व्यक्ति और धरती के सम्बन्ध को मजबूत करता है। माता-पुत्र के संबंध की मर्यादा को स्वीकार करके ही मनुष्य के अन्दर राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों और अधिकारों का जन्म होता है।

पृथ्वी और मनुष्य का यही मजबूत संबंध राष्ट्र को दृढ़ और विकसित करता है। आदर-भाव की इस पक्की नींव पर ही राष्ट्ररूपी भवन का निर्माण किया जा सकता है। आदर की यह भावना उस दृढ़ चट्टाने के समान है, जिस पर टिककर राष्ट्र का जीवन चिरस्थायी हो सकता है।

प्रश्न 9. पृथ्वी के वरदानों में भाग पाने का अधिकारी बनने के लिए मनुष्य को क्या करना पड़ेगा? मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति किसका कारण बन सकती है?

उत्तर: पृथ्वी हमारी माता के समान है। जो मनुष्य अपनी माता का सत्कार करते हैं, उसकी सेवा करते हैं; वे ही उसकी सम्पत्ति में भाग पाने के अधिकारी होते हैं। ठीक उसी प्रकार पृथ्वी के प्रति मातृभाव रखकर उसकी सेवा करने वाले, आदर करने वाले और उसकी उन्नति के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाले मनुष्य ही पृथ्वी के वरदानों में भाग पाने के अधिकारी बन सकते हैं।

इसके विपरीत जो व्यक्ति स्वार्थवश मातृभूमि की सम्पत्ति पर दृष्टि रखता है, स्वार्थवश ही उससे प्यार करता है; वह राष्ट्र की उन्नति के स्थान पर अवनति का कारण बनता है। ऐसे स्वार्थी व्यक्ति राष्ट्र का विकास नहीं कर सकते है।

प्रश्न 10. लेखक ने जन के सौहार्द भाव की अखंडता को कैसे सिद्ध किया है?

उत्तर: लेखक कहता है कि जिस प्रकार से भाइयों में ऊँच-नीच का भाव नहीं होता है, उसी प्रकार इस पृथ्वी पर रहने वाले सभी मनुष्य भी समान भाव रहते हैं। उनमें ऊँच-नीच का कोई भाव नहीं होता है। इस धरती पर जन्म लेने वाला प्रत्येक मनुष्य समान सुविधाओं का अधिकारी है। मातृभूमि की सीमाएँ अनंत हैं।

इसके निवासी अनेक नगरों, जनपदों, शहरों, गाँवों, जंगलों और पर्वतों पर निवास करते हैं। अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं, अलग-अलग धर्मों को मानते हैं; तथापि एक ही मातृभूमि के पुत्र हैं। इस कारण ये सब

पारस्परिक प्रेम, सहयोग और बन्धुता से रहते हैं। भाषा, धर्म अथवा रीति-रिवाज इनकी अखंडता में बाधा उत्पन्न नहीं करते हैं।

प्रश्न 11. समग्र राष्ट्र जागरण और प्रगति का एक समान उदार भाव से संचालित होना क्यों आवश्यक है?

उत्तर: इस पृथ्वी पर निवास करने वाली सभी जातियों के लिए समान स्थान है और समन्वय के माध्यम अपने राष्ट्र की भरपूर प्रगति और उन्नति करने का अधिकार सभी जातियों को है। राष्ट्र के विकास के लिए ये विभिन्न जातियाँ एक हो जाती हैं, क्योंकि किसी एक जन को छोड़कर राष्ट्र कभी उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता है।

यदि राष्ट्र की कोई एक जन या जाति निर्बल है और अन्धकार में डूबी हुई है तो सम्पूर्ण राष्ट्र को उतना अंश सदैव कमजोर रहेगा। अत: समग्र राष्ट्र जागरण और प्रगति का एक समान उदार भाव से संचालित होना आवश्यक है।

प्रश्न 12. राष्ट्र का तीसरा अनिवार्य तत्व क्या है? लेखक ने संस्कृति को राष्ट्र का मस्तिष्क कहा है?

अथवा

'बिना संस्कृति के जन की कल्पना कवन्ध मात्र है; संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर: राष्ट्र का तीसरा अनिवार्य तत्व संस्कृति' है। बिना संस्कृति के मानव की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। संस्कृति से रहित मानव को उसी प्रकार समझना चाहिए, जैसे बिना सिर के धड़, जो सिर की अनुपस्थिति में निष्क्रिय और अनुपयोगी होता है।

बिना सिर के धड़ न तो विचार कर सकता है और न ही अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो सकता है। सिर ही है जो उसे विचारों की अभिव्यक्ति में समर्थ बनाता है। ठीक उसी प्रकार संस्कृति हमें चिन्तन-मनन के अवसर प्रदान करती है। इसीलिए लेखक ने संस्कृति को राष्ट्र का मस्तिष्क कहा है।

प्रश्न 13. लेखक ने संस्कृति को 'राष्ट्र के विटप का पुष्प' क्यों कहा है?

उत्तर: जिस प्रकार कोई भी पेड़ कितना ही सुन्दर क्यों न हो, किन्तु जब तक उस पेड़ पर फूल नहीं लगते, तब तक वह पेड़ उतने सम्मान का अधिकारी नहीं बन पाता है, जितना कि फूलों से लदा हुआ पेड़।

जिस प्रकार पत्रों से रहित होने पर किसी पेड़ की समस्त शोभा उसके फूलों से होती है उसी प्रकार राष्ट्र के जीवन का चिन्तन, मनन एवं सौन्दर्य-बोध उसकी संस्कृति में निवास करता है। यही कारण है कि लेखक ने संस्कृति को राष्ट्र के विटप का पुष्प कहा है।

प्रश्न 14. संस्कृति का उदय एवं विकास किस पर निर्भर है?

अथवा

लेखक ने किस आधार पर ज्ञान और कर्म को संस्कृति के रूप में परिभाषित किया है?

उत्तर: मनुष्य ने जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया है, उसी के आधार पर वह जीवन के विविध कर्म करता है। अपने ज्ञान और कर्म के इसी आधार पर ही वह साहित्य, संगीत, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला आदि के क्षेत्र में अपना योगदान दे सका।

किसी समाज के ज्ञान और उस ज्ञान के आलोक में किए गए कर्तव्यों के सम्मिश्रण से जो जीवन-शैली उभरती है या सभ्यता विकसित होती है, वही संस्कृति है। संस्कृति की यह समस्त धरोहर व्यक्ति के ज्ञान और कर्म का ही परिणाम है, जिस पर संस्कृति का उदय एवं विकास निर्भर है।

प्रश्न 15. विभिन्न संस्कृतियों की विभिन्नता में एकता को सिद्ध कीजिए?

उत्तर: एक राष्ट्र में कई समुदाय होते हैं। उन सबकी अपनी-अपनी संस्कृतियाँ होती हैं। इन संस्कृतियों का स्तर साहित्य, कला, नृत्य, गीत आदि में मुखरित होता है। बाह्य दृष्टि से देखने पर ये सभी भिन्न-भिन्न दिखाई देती हैं, किन्तु इनके अन्दर मूल रूप से एक ही सूत्र और एक ही आत्मा है।

सहृदयता से प्रत्येक संस्कृति के आनन्द देने वाले पक्ष को स्वीकार करना ही राष्ट्रीयता की भावना का परिचायक है। इस प्रकार ये सभी संस्कृतियाँ एक सूत्र में बँधती हैं और सम्पूर्ण राष्ट्र की सम्मिलित संस्कृति अर्थात् राष्ट्रीय संस्कृति को मुखरित करती हैं।

निबंधात्मक प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. 'राष्ट्र का स्वरूप' पाठ में लेखक ने किन मुख्य तीन अंगों को समाविष्ट किया है? विस्तार से उन पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

उत्तर: 'राष्ट्र का स्वरूप' पाठ के अन्तर्गत लेखक ने राष्ट्र के तीन अंग भूमि, जन एवं संस्कृति को समाविष्ट किया है।

(i) भूमि – लेखक ने 'भूमि' को राष्ट्र का प्रथम तत्व या अंग माना है। लेखक के अनुसार भूमि का निर्माण देवों के द्वारा किया गया है और उसका अस्तित्व अनंत काल से है। वह समस्त विचारधाराओं की जननी है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह भूमि के प्रति अपने कर्तव्य को समझे।

भूमि के प्रत्येक क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त करके राष्ट्र का भौतिक विकास करे। देश के नवयुवक पृथ्वी के गर्भ में छिपे रत्न, खनिज और बहुमूल्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करें । विज्ञान के साधन और अपने परिश्रम से राष्ट्र की भौतिक समृद्धि में वृद्धि करें।

(ii) जन – लेखक के अनुसार भूमि पर निवास करने वाली मनुष्य अर्थात् जन राष्ट्र का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग है। पृथ्वी माता है और जन उसके पुत्र हैं। जन ही पृथ्वी के साथ माता का संबंध स्थापित करके जड़ में चेतन का संचार करता है। भूमि एक माता के समान जन को पुत्र की भाँति स्नेह प्रदान करती है। सच्चे हृदय से पृथ्वी के प्रति मातृभाव रखने वाले जन को पृथ्वी अपने वरदानों का अधिकारी बनाती है। जिस प्रकार माता

अपने समस्त पुत्रों को समान भाव से चाहती है, उसी प्रकार इस पृथ्वी पर बसने वाले सभी जन समान हैं। अनेक स्थानों पर रहते हुए तथा अनेक भाषा बोलते हुए पृथ्वी के जनों में मातृभाव है।

जन्मभूमि को माता मानकर उसके प्रति उसी पूज्य भाव से जब वहाँ का मनुष्य (जन) अपने कर्तव्य का पालन करता है, तब वह राष्ट्र चहुँमुखी विकास को प्राप्त करता है।

(iii) संस्कृति – 'संस्कृति' को लेखक तीसरा अंग मानते हुए कहता है कि संस्कृति राष्ट्र के जीवनरूपी वृक्ष का पुष्प है। संस्कृति ही मानव (जन) का मस्तिष्क है। संस्कृति की उन्नति पर ही राष्ट्र की उन्नति निर्भर करती है। राष्ट्र के विभिन्न जनों की संस्कृतियाँ मिलकर राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण करती हैं। राष्ट्र का जन विभिन्न माध्यम से आनंद के एक सूत्र में बँधा हुआ है।

प्रश्न 2. एक उन्नत और विकसित राष्ट्र का निर्माण किस प्रकार संभव है? पाठ के आधार पर समझाइए।

उत्तर: अपनी धरती के प्रति आदर – भाव; जन और भूमि के संबंध को मजबूत करता है और राष्ट्र को पुष्ट व विकसित करता है। इस प्रकार पृथ्वी के प्रति आदर भाव की इस सुदृढ़ दीवार पर ही राष्ट्र के भवन का निर्माण संभव हो सकता है। आदर की यह भावना एक मजबूत चट्टान के समान है, जिस पर स्थिर होकर राष्ट्र का जीवन चिर-स्थायी हो जाता है।

"पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका आज्ञाकारी पुत्रं हूँ" इस भावना के साथ तथा माता और पुत्र के सम्बन्ध की मर्यादा को स्वीकार करके प्रत्येक देशवासी अपने राष्ट्र एवं देश के लिए अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति जागरूक और सचेत हो सकता हैं।

जिस प्रकार अपनी माता का आदर-सत्कार करने वाला मनुष्य ही अपनी माता की संपत्ति में अंश प्राप्त करने का अधिकारी होता है, ठीक उसी प्रकार पृथ्वी के रत्नों को वही मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो पृथ्वी का आदर करता है, उसे अपनी माता के तुल्य मानता है।

प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी माता से स्नेह करे, नि:स्वार्थ भाव से उसकी सेवा करके उसका आशीर्वाद प्राप्त करे। माता के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करेनी प्रत्येक जन को नि:स्वार्थ धर्म है।

इसके विपरीत जो पुत्र स्वार्थ के वशीभूत होकर अपनी माता की संपत्ति पर कुदृष्टि रखता है और माता से प्यार भी अपने स्वार्थ के कारण करता है, वह राष्ट्र की उन्नति और विकास के स्थान पर उसकी अवनति और पतन का कारण बन जाता है।

ऐसे स्वार्थीपुत्र कभी भी राष्ट्र की उन्नति नहीं कर सकते हैं। इसलिए जो व्यक्ति भूमि के साथ अपनी माता का संबंध जोड़ना चाहता है और उसका सच्चा पुत्र बनना चाहता है तो उसे नि:स्वार्थ भाव से अपने कर्तव्य के पालन.की ओर सजग रहना होगा।

अत: राष्ट्र की उन्नति और विकास करने के लिए आवश्यक है कि हम अपने अधिकारों की तरह अपने कर्तव्यों पर भी ध्यान दें।

प्रश्न 3. 'राष्ट्र का स्वरूप' पाठ के आधार पर जन के प्रवाह को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर: प्रत्येक राष्ट्र का इतिहास निरन्तर परिवर्तनशील रहता है। उसमें समय-समय पर अनेक उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, किन्तु राष्ट्र के निवासियों की जीवन-श्रृंखला कभी समाप्त नहीं होती है। वह निरन्तर गतिशील रहती है। मनुष्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने राष्ट्र के साथ जुड़ा रहता है।

इसी प्रकार हजारों वर्षों से मनुष्य ने अपनी भूमि के साथ तादात्म्य स्थापित किया हुआ है और विभिन्न दृष्टियों से एकरूपता स्थापित की हुई है। जब तक राष्ट्र रहेगा और राष्ट्र की प्रगति होती रहेगी, तब तक राष्ट्र के 'जन' का जीवन भी रहेगा।

हमारे राष्ट्र के इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में उन्नति और अवनति के अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे हैं, किन्तु हमारे देश (राष्ट्र) के लोगों अर्थात् भारतीयों ने स्वयं में नवीन शक्ति का निर्माण किया और प्रत्येक परिस्थितियों को सहन किया तथा स्वयं को उन परिस्थितियों के अनुरूप ढाला भी।

साथ ही उन विषम परिस्थितियों से स्वयं को बाहर भी निकाली। आज भी हमारे राष्ट्र के निवासी इन उतार-चढ़ाव को साहस के साथ मुकाबला करने के लिए उत्साहपूर्वक जीवित हैं। राष्ट्र के निवासियों का इस प्रकार निरन्तर गतिशील रहने वाला यह जीवन किसी नदी के प्रवाह के समान है।

जिस प्रकार किसी नदी का प्रवाह निरन्तर बहते हुए अपने मार्ग में यहाँ-वहाँ डेल्टा बनाता हुआ चलता रहता है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपने परिश्रम और कर्मों से राष्ट्र में विकास के पदचिहन छोड़ता जाता है। अत: इस प्रवाह को राष्ट्र की उन्नति और विकास के पथ की ओर मोड़ना अत्यावश्यक है क्योंकि जन का प्रवाह राष्ट्र का वह महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है जिसके बिना राष्ट्र की कल्पना करना भी संभव नहीं है।

प्रश्न 4. राष्ट्रीय संस्कृति के स्वरूप को विस्तार से परिभाषित कीजिए।

उत्तर: किसी भी राष्ट्र का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व उसकी संस्कृति है। किसी राष्ट्र के अस्तित्व में संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि किसी राष्ट्र की भूमि और जन को संस्कृति से अलग कर दिया जाए तो एक पूर्ण विकसित और उन्नत राष्ट्र को ध्वस्त होने में देर नहीं लगेगी। संस्कृति और मनुष्य एक-दूसरे के पूरक होने के साथ-साथ एक-दूसरे के लिए आवश्यक तत्व हैं।

दोनों एक एक-दूसरे पर इस भाँति निर्भर हैं कि एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसीलिए संस्कृति को राष्ट्र के जीवनरूपी वृक्ष का फूल कहा गया है।

अर्थात् किसी समाज के ज्ञान और उस ज्ञान के आलोक में किए गए कर्तव्यों के सम्मिश्रण से जो जीवन-शैली उभरती है या सभ्यता विकसित होती है, वही संस्कृति है।

समाज ने अपने ज्ञान के आधार पर जो नीति या जीवन का उद्देश्य निर्धारित किया है, उस उद्देश्य की दिशा में उसके द्वारा सम्पन्न किया गया उसका कर्तव्य उसके रहन-सहन, शिक्षा, सामाजिक व्यवस्था आदि को प्रभावित करता है। इसे ही संस्कृति कहा जाता है।

प्रत्येक राष्ट्र विभिन्न जातियों का निवास स्थान है। वहाँ निवास करने वाली जातियों की अपनी अलग-अलग संस्कृतियाँ होती हैं। यह विभिन्न संस्कृतियाँ इन जातियों की विशेषताओं से प्रेरित होकर विकसित होती हैं।

जो समन्वय, पारस्परिक सहनशीलता तथा सहयोग जैसी संभावनाओं के कारण सम्मिलित होकर एक संस्कृति अर्थात् राष्ट्रीय संस्कृति का रूप धारण करती है। यह समन्वय और सहिष्णुता का भाव उन्हें एकता के सूत्र में बाँधता है और उसे राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करता है।

प्रश्न 5. वे कौन-से कारण हैं जो भारतीयों को एकता प्रदान करते हैं?

अथवा

वर्णन करिए कि भारत की विभिन्नता में एकता किस प्रकार है?

उत्तर: भारत विभिन्नताओं का देश है। यह इसके प्राकृतिक रूपों, धर्मों, सामाजिक रीति-रिवाजों, आकार, भाषाओं, मौसमों, ऋतुओं, वनस्पतियों, भोजन, आदतों, वेशभूषा आदि में देखी जा सकती है। ये विभिन्नता भारत के लोगों तथा प्राकृतिक रूपों में भी देखी जा सकती हैं।

विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के लोग भी विभिन्नताओं से परिपूर्ण परिलक्षित होते हैं। परन्तु फिर भी उनमें कुछ न कुछ समानता है जो उन्हें वास्तविक भारतीयों के रूप में संगठित करता है। भारत की यह विभिन्नता केवल बाहरी है। वास्तव में इसकी विभिन्नताओं में भी एकता निहित है।

भौगोलिक अन्तरों के बावजूद सम्पूर्ण देश भारत है। इसी प्रकार, बाह्य अन्तरों के होते हुए भी उनके विशेष गुण भी पूरी तरह से भारतीय ही हैं। उनकी राष्ट्रीय विरासत

समान है। उनके नैतिक तथा मानसिक गुण भी समान हैं। उनके जीवनयापन का तरीका, दु:ख व प्रसन्नता प्रकट करने का तरीका, उत्साह व निराशा का भाव भी समान है। उनके जीने के तरीके भी समान हैं तथा जीवन एवं उसकी समस्याओं के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण भी समान है।

धार्मिक विभिन्नताओं के बावजूद भी सांस्कृतिक एकता है। ये विभिन्नताएँ नीचे रहकर गायब हो जाती हैं और केवल एकता ही दृष्टिगोचर होती है।

समय-समय पर अनेक संस्कृतियों ने भारत में प्रवेश किया, विस्तार पाया और समाप्त हो गईं, किन्तु भारतीय संस्कृति उन संस्कृतियों के अच्छे गुणों को स्वयं में समाहित करके आज भी जीवित है। इस प्रकार भारत ने अपनी विभिन्नताओं के बावजूद भी अपनी एकता को अक्षुण्ण बनाए रखा है।

प्रश्न 6. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर: जीवन-परिचय- डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का जन्म 7 अगस्त 1904 ई. में मेरठ जनपद के खेड़ा ग्राम में हुआ था। इनके माता-पिता लखनऊ में रहते थे; अत: उनका बाल्यकाल लखनऊ में ही व्यतीत हुआ

एवं यहीं उनकी प्रारम्भिक शिक्षा भी हुई। इन्होंने 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। लखनऊ विश्वविद्यालय ने इन्हें 'पाणिनिकाल भारत' शोध प्रबन्ध पर पी-एच.डी. की उपाधि से विभूषित किया। यहीं से इन्होंने डी.लिट. की उपाधि भी प्राप्त की।

डॉ. अग्रवाल पाली, संस्कृत एवं अंग्रेजी के उच्चकोटि के विद्वान माने जाते हैं। इन्होंने संस्कृति और पुरातत्व का गहन अध्ययन किया।

सन् 1967 ई. में इनका निधन हो गया। रचनाएँ- डॉ. अग्रवाल ने निबन्ध, शोध और सम्पादन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं

(1) निबन्ध संग्रह – (1) पृथ्वी-पुत्र (2) कल्पलता (3) कला और संस्कृत, (4) कल्पवृक्ष (5) भारत की एकता, (6) माता भूमि, (7) वाग्धारा आदि।

(i) शोध – पाणिनिकालीन भारत ।
(ii) सम्पादन – (1) जायसीकृत पद्मावत की संजीवनी व्याख्या, (2) वाणभट्ट के हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन्।

पाठ – सारांश :

'राष्ट्र का स्वरूप' नामक निबन्ध लेखक वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखित है। लेखक के अनुसार राष्ट्र के तीन प्रमुख तत्व हैंभूमि, जन एवं संस्कृति। लेखक ने पाठ के अन्तर्गत इन तीनों तत्वों की विशद् व्याख्या की है।

भूमि – राष्ट्र का पहला तत्व भूमि है। भूमि का निर्माण देवों ने किया है तथा वह अनंत काल से विद्यमान है। भूमि वस्तुतः समस्त राष्ट्रीय विचारधाराओं की जननी है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह भूमि की सुन्दरता, उपयोगिता और महिमा को समझे ।

पृथ्वी का सम्पूर्ण अध्ययन जागरणशील राष्ट्र के लिए बहुत आनन्ददायक माना गया है। जैसे देश की भूमि की उपजाऊ शक्ति, जल बरसाने वाले मेघ, वहाँ की वनस्पति, पृथ्वी के गर्भ में भरी अनेक प्रकार की बहुमूल्य वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाना चाहिए।

राष्ट्र के नवयुवकों के मन में जब तक इन सबको जानने की जिज्ञासा नहीं उत्पन्न होती, तब तक हम सोए हुए के समान हैं। अत: देश के नवयुवकों में इन वस्तुओं के प्रति नवीन भाव जाग्रत करने चाहिए। विज्ञान के साधन और अपने श्रम से राष्ट्र की भौतिक समृद्धि करनी होगी। तभी राष्ट्र को नया रूप दिया जा सकता है।

जन – मातृभूमि (भारत) पर बसने वाला मनुष्य (जन) राष्ट्र का दूसरा अंग है। पृथ्वी माता है तो उस पर निवास करने वाला मनुष्य उसकी सन्तान है। जन के ही कारण पृथ्वी और जन का सम्बन्ध जड़ नहीं, चेतन है। पृथ्वी को माता मानने की भावना जन में राष्ट्रीयता को जन्म देती है।

इसी भावना के कारण मातृभूमि के प्रति श्रद्धा एवं आनन्द का भाव जुड़ता है। जो जन पृथ्वी के साथ अपने माता-पुत्र के सम्बन्ध को स्वीकार करता है, वास्तव में वही पृथ्वी के वरदानों का अधिकारी है। इसके

विपरीत स्वार्थ की भावना से माता-पुत्र का सम्बन्ध जोड़ने वाला जन पतन के गर्त में गिर जाता हैं। माता-पुत्र का यह सम्बन्ध बहुत पवित्र है। माता के प्रति अनुराग व सेवा-भाव पुत्र का कर्तव्य है।

जिस प्रकार कोई माता अपने सभी पुत्रों को समान भाव से प्रेम करती है, उसी प्रकार इस पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी जन समान हैं। पृथ्वी के विभिन्न भागों पर रहते हुए, विभिन्न प्रकार की भाषाएँ बोलने के बावजूद सभी पृथ्वी के जनों में मातृत्व की भावना है।

उनमें किसी भी प्रकार का आपसी भेदभाव नहीं है। जन का प्रवाह अनन्त है और समान भाव से प्रगति और उन्नति करने का अधिकार सभी का है।

किसी एक जन को छोड़कर राष्ट्र कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है। जन्मभूमि को जननी मानकर उसके प्रति पूज्य भाव से जब वहाँ के जन अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं, तब वह राष्ट्र स्वत: ही बहुमुखी प्रगति करने लगता है।

संस्कृति – राष्ट्र का तीसरा तत्व'संस्कृति' है। बिना संस्कृति के मनुष्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है। मनुष्य द्वारा युगों-युगों में संचित की गई सभ्यता का ही दूसरा नाम संस्कृति है। संस्कृति की उन्नति से ही राष्ट्र की उन्नति संभव है।

यदि भूमि और जन को संस्कृति से अलग कर दिया जाए, तो ऐसी स्थिति में राष्ट्र का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। संस्कृति के अभाव में जन और राष्ट्र दोनों ही निष्प्राण हैं। संस्कृति ही इन दोनों को मार्गदर्शन करती है।

इसलिए लेखक ने संस्कृति को जीवन-विटप का पुष्प कहा है। राष्ट्र के विभिन्न जनों की संस्कृति के समन्वय से ही राष्ट्रीय संस्कृति का स्वरूप विकसित होता है। जिस प्रकार अनेक नदियाँ

आकर समुद्र में मिलकर एकरूप हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन की अनेक राष्ट्रीय संस्कृतियाँ मिलकर एक सुखद राष्ट्र का निर्माण करती हैं।

राष्ट्रीय जन साहित्य, कला, नृत्य, गीत, आमोद-प्रमोद के माध्यम से अपने भावों को प्रकट करता है। बाहरी रूप से देखने पर इस संस्कृति के अनेक लक्षण दिखाई देते हैं किन्तु आन्तरिक आनन्द की दृष्टि से उन सबमें एकसूत्रता है। सहृदय व्यक्ति प्रत्येक संस्कृति के आनन्द पक्ष को स्वीकार करके प्रसन्न होता है।

अपने पूर्वजों के द्वारा किए गए समस्त पराक्रम और विस्तार को हम गौरव के साथ धारण करके उसके तेज से अपने भावी जीवन को सँवारना चाहते हैं। यही भाव राष्ट्रीय संवर्धन का स्वाभाविक प्रकार है। जहाँ अतीत वर्तमान के लिए भार-रूप नहीं है, जहाँ भूत वर्तमान को जकड़े नहीं रखना चाहता, वरन् अपने वरदान से पुष्ट करके उसे आगे बढ़ाना चाहता है, उस राष्ट्र का हम स्वागत करते हैं।

कठिन शब्दार्थ

(पा.पु. पृ.10) सचेत = जागरूक, पार्थिव = बेजान, निर्जीव। जाग्रत = जागरूक। बलवती = बलवान, मजबूत। जननी = जन्म देने वाली। निर्मूल = जड़रहित, आधारहीन। आद्योपन्ति = असंक्षिप्त। कमर कसना

= तैयार होना। सांगोपांग = शरीरतः। आनन्दप्रद =आनन्द प्रदान करने वाला। सूत्रपात = कार्य आरंभ करना। मेघ = बादल। परिधि = सीमा। तृण =तिनका। निधि = कोष। वसुन्धरा = धरती। देह = शरीर। अभ्युदय = उदय, उन्नति। नग = पर्वत। उद्यम = परिश्रम। नित्य = प्रतिदिन। ध्येय = लक्ष्य। पुष्कल = अत्यधिक। ..(पा. पु. पृ. 11) असंभव = जो संभव न हो। जन = मनुष्य। अचेतन = निर्जीव।

नमो = प्रणाम है। पृथिव्यै = पृथ्वी को। मात्रे = माता को। दृढ़ = मजबूत। भित्ति = दीवार। चिर = दीर्घकालीन, अनश्वर। आश्रित = निर्भर। भाग = हिस्सा। अनुराग = लगाव, स्नेह। निष्कारण = कारणहीनता। अधोपतन = अवनति, दुश्चरित्रता।

विस्तार = फैलाव। अनंत = सीमारहित। सौहार्द = दयालुता। अखंड = न टूटने वाला। प्रांगण = आँगन। समन्वय = क्रम, सामंजस्य। मार्ग = रास्ता। भरपूर = पूरी तरह। प्रगति = तरक्की। सुध लेना = ध्यान देना। निर्बलता = कमजोरी। समग्र = पूरा। उदार = दयालु।

(पा.पु.पू. 12) संचालित = अनुप्राणित, चालित। प्रवाह = गति। सहस्रों = हजारों। तादात्म्य = अभिन्नता, तालमेल। रश्मियाँ = किरण। नित्य = प्रतिदिन। सतत्वाही = निरन्तर प्रवाहित होने वाली। श्रम = परिश्रम। उत्थान = उन्नति, विकास। कबन्ध = धड़।

अभ्युदय = उन्नति, उत्थान। विरहित = रहित, वियोगी। विटप = वृक्ष। पुष्प = फूल। युक्ति = उपाय। पृथक-पृथक = अलग-अलग। अदम्य = जिसका दमन न हो सके। अविरोधी = विरोधहीन। आमोद-प्रमोद = आनंद, मनोरंजन। बाह्य = बाहरी। अमिट = कभी न समाप्त होने वाला। स्वच्छन्द = स्वतंत्र।